ISSN (Online) 2582-9327

IJARSCMT

International Journal of Advanced Research in Science, Commerce, Management and Technology

Impact Factor: 5.781

Volume 3, Issue 8, August 2022

आदिवासी साहित्य का उद्भव एवं विकास

पूजा चौधरी

अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

शोध–सारांश :–

माना जाता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के रूप में इनका इतिहास छोटे–छोटे भागों से प्रारम्भ होता है। इन लघु समाजों को प्रकृति के विभिन्न तत्वों एवं वन में विचरण करने वाले अन्य प्राणियों से मात्र अस्तित्व के लिए कठीन संघर्ष एक लम्बे समय से गुजरना पड़ा इस संघर्ष के अनुभव के आधार पर उसने उच्चतर कुशलता प्राप्त किया। उसने अपनी संगठनात्मक शक्ति का धीरे–धीरे उपयोग किया। मानव समाज की जनसंख्या तत्कालीन संसाधनों के आधार पर सुगमता से भरण–पोषण की सीमा की तुलना में सतत् रूप से बढ़ती रही और मनुष्य के ऐतिहासिक विकासक्रम में उस समय एक नया समय आया जब विभिन्न आदिवासी समाज सीमित साधनों पर विकास के लिए एक–दूसरे स्पर्धा करने लगे। यह यह प्रतिस्पर्धा और संघर्ष हजारों वर्षों तक चलता रहा है। इस दौर में जन समूहों का अनेक दिशाओं में गमन होता रहा। दुनिया के कई भागों में जनजातीय समूहों का धीरे–धीरे नदियों की समतल घाटितयों में बसने लगी और वहीं पर स्थायी कृषि का विकास हुआ। इन्हीं बिन्दुओं को शोध – पत्र में समाहित करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द :– आदिवासी, साहित्य, इतिहास, संगठनात्मक, विकासक्रम, जनजातीय, प्रतिस्पर्धा आदि।

प्रस्तावन :

प्रस्तुत शोध पत्र में नयी अर्थ व्यवस्था में एक बड़ी जनसंख्या को संपोषक का स्थायी आधार मिला। यहां पर आकर मानव समाज में ग्रामीण समुदायों का उदय हुआ। इन समाजों में विभिन्न कबाइली समूहों के सदस्य इस प्रकार घुलमिल गये कि वे अपना मूलभूत गये। कहीं–कहीं उनके जातीय नाम भर रह गये कुछ जातियों के अपने विशिष्ट आर्थिक क्रियाकलाप भी बन रहे धीरे–धीरे ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में विविधीकरण भाषा और कार्यात्मक विश्लेषीकरण का जन्म हुआ। इसके साथ ही जाति पर आधारित व्यवसायों की स्थापना हुई। ग्राम एक स्वतंत्र एवं स्वतंत्रपूर्ण इकाई बनता गया। सामाजिक संगठन के अन्तर्जातीय रूप से ग्रामीण समाज और उसके आगे उसके भागे आधुनिक औद्योगिक व्यवसथा के रूप में परिवर्तन की अनवरत प्रक्रिया सभी देशों में गतिशील है। कहीं वह तेज है, कहीं धीमी इसके साथ ही यह प्रक्रिया पश्चिमी देशों में लगभग अपनी अंतिम सीमा तक पहुंच चुकी है।

आदिवासी से तात्पर्य :–

भारत देश में युग–युगान्तर से विभिन्न संस्कृतियों का संगम स्थल रहा है। भारत को अनेकता में एकता का देश कहा जाता है। भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखने से यह पता चलता है कि बितानी सल्तनत ने जहाँ–जहाँ प्रवेश किया, वहां के निवासियों को अपने से अलग करने हेतु उन्हें ने–हिव या ट्राख की संज्ञा दे दी। उसके पूर्व यहां के समुदाय के लोगों को जिन्हें आदिवासी या जनजाति कहा जाता है, उनके अपने नामों से ही जाना जाता था। प्राचीन ग्रंथों में इनका उल्लेख इनके अपने ही नामों से जाना जाता है। उदाहरणार्थ भील, कोल, निषाद आदि के रूप में हुआ है।

विद्वानों के अनुसार हजारों वर्ष पूर्व आर्यों ने जब भारत में प्रवेश किया तब उन्हें यहां के मूल निवासियों से संघर्ष करना पड़ा। प्रत्येक संघर्ष में सदैव आर्य ही विजयी होते रहे, जिसका कारण आर्यों के पास घोड़ों का होना एवं आर्यों को लोहे के हथियार बनाने की कला का ज्ञान था। मूल निवासियों के पराजित होने के पश्चात सम्भवतः उनके समक्ष दो विकल्प थे–

1. वे आर्य धर्म को स्वीकार कर लें या
2. वे ऐसे दुर्गम स्थलों में पलायन कर जाये जहां आर्य पहुंच ही न सके। उन्हें आर्यों ने दास कहा तथा अपने वर्णक्रम में चौथा स्थान दिया।

किन्तु वे मूल निवासी जो आर्य संस्कृति से स्वयं को सम्मानित कर सके वे कठिन वनों में चले गए। मूल निवासी आदिवासी समाज जो हजारों वर्ष पूर्व आक्रांताओं के भय से कठिन वनों में शरण लेने के लिए विवश हुए थे वे आज आदिवासी के नाम से जाने जाते हैं। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में आदिवासियों का महत्वपूर्ण स्थान है। विश्व में आदिवासियों के जनसंख्या की दृष्टि से भारत देश में आदिवासियों की जनसंख्या अन्य देशों से अधिक है।

सन् 1891 की जनगणना रिपोर्ट में तत्कालीन जनसंख्या आयुक्त जे.ए. बैन्स ने आदिवासियों को वन जातियाँ कहा था। 1891 से 1947 तक की जनगणना रिपोर्ट में उनहें विभिन्न नामों से उल्लेख किया है– जीववादी, जनजातीय, पर्वतीय और वनीय जनजातियां, आदिम जनजातियां आदि[1] नृतत्वशास्त्रियों ने आदिवासियों को अलग– अलग नामों से संबोधित किया है।

रिसले लेके, ग्रियर्सन, सोबर्ट, टेलेंटस सेजविक तथा ए.वी. जक्कर ने उन्हें आदिवासी नाम से पुकारा हैं हटअन ने इन्हें आदिम जातीय नाम से संबोधित किया है। सर बेन्स ने इन्हें पर्वतीय जनजातियां की संज्ञा दी है। टेलन्टस, सेजविक तथा मार्टिन उन्हें सर्वजीववादी कहते हैं। बेन्स ने उन्हें वन्य जाति नाम से संबोधित किया है। सामाजिक मानव वैज्ञानिकों में एक ऐसा समूह है जो जनजातियों को आदिवासी स्वीकार नहीं करता। इस समूह के अग्रणी **धुरिये** हैं। धुरिये अपने तर्क को कथा कथित आदिवासी[2] प्राक्कल्पना को आधार बनाकर रखते हैं धुरिये का कहना है कि वे लोग जो जनजातियों के लिए आदिवासी शब्द का प्रयोग करते हैं कुछ प्रजातीय भाषा, सांस्कृतिक तत्व और संस्कृति के स्तर को भूल जाते हैं। उनके कथनानुसार जनजातियों

ISSN (Online) 2582-9327

IJARSCMT

International Journal of Advanced Research in Science, Commerce, Management and Technology

Impact Factor: 5.781

Volume 3, Issue 8, August 2022

को आदिवासी कहना कवल आभासी नृजातीय ऐतिहासिक है। धुरिये के अनुसार संस्कृति और सामाजिक दृष्टि से जनजातियों हिन्दू समाज का ही एक अंग है वे लिखते हैं–तथाकथित आदिम जातियाँ जो अनुसूचित जनजातियों की बहुत बड़ा अंग है और जिन्हें जनगणनाओं में जीववादी कहा गया है, बहुत करके पिछड़ी हिन्दू जातियां है।[3]

धुरिये ने आदिवासी समाज के लिए अनुसूचित जनजातियों (शिड्यूल्ड ट्राइब) नाम प्रस्तावित किया है जो कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के अंतर्गत स्वीकारा गया है।[4]

डॉ. राय वर्गन के अनुसार भारत में लगभग 427 जनजातीय समुदाय निवास करती है।[5]भारत सरकार के मानव वैज्ञानिक सर्वेक्षण विभाग 1967 ने भारत में 314 जनजातियों के बारे में बता लगाया है। यद्यपि सन् 1951 ई. में भारत में लगभग 212 प्रकार की जनजातियों की सूची तैयार की गई थीं लेकिन क्रमशः इन समुदायों की संख्या बढ़ती ही गयी और भारत में लगभग 485 जनजातीय समुदाय, जिनको अनुसूचित जनजाति घोषित किया गया है, निवास करते हैं। वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार सम्पूर्ण भारत में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या 67758380 है जो कि कुल जनंसख्या का 8.08 प्रतिशत है।

आदिवासी की परिभाषा :

जनजातियों और गैर जनजातियों के बीच सदियों के लगातार अन्तर्संबंध रहा है, जिसके फलस्वरूप अनेक विचारों का परस्पर आदान–प्रदान हुआ है। यह अन्तर्संबंध ही जनजातियों की सही और सारी पृथ्वी पर शासन करने वाले लोगों की परिभाषा देने के मार्ग में प्रमुख बाधा रही है। मानव वैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय, सामाजिक कार्यकर्ता, प्रशासक तथा ऐसे ही अन्य विद्वानजन जो जनजातियों तथा उनकी समस्याओं से सैद्धांतिक अथवा व्यवहारिक आधार पर जुड़े रहे हैं, अपनी विषय–वस्तु की अवधारणा एवं परिभाषा के विषय में एकमत नहीं है। विचार–विमर्श के आधार स्वरूप यहां आदिवासी की कुछ परिभाषाएं दी जा रही हैं–

''आक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार सरलतम रूप में आदिवासी ऐसी टोलियों का एक समूह है जो अपना उद्गम एक समान पूर्वज से होने का दावा करते हैं।''[6]

''डिक्सनरी ऑफ एन्थ्रोपोलॉजी के अनुसार, आदिवासी एक ऐसा सामाजिक समूह है जो निश्चित क्षेत्र, भाषा, सांस्कृतिक एकरूपता और एकीकृत सामाजिक संगठन रखते हैं।''[7]

आई.एम. लेविस के शब्दों में, ''वैचारिक दृष्टि से आदिवासी समुदाय आकार में छोटे होते हैं और सामाजिक, वैधानिक और राजनीतिक, संबंधों में विशेष सांसारिकता तक सीमित होते हैं और उनके अपने नैतिक मूल्य, धर्म और दृष्टिकोण होते हैं। आदिवासी भाषायें अलिखित होती है और इस प्रकार समय और स्थान के अनुसार संचार, निश्चित रूप से कम से कम हो पाता है।''[8]

भारतीय संदर्भ में प्रसिद्ध भारतीय विद्वान **डॉ. डी.एन. मजूमदार** द्वारा दी गई जनजाति की जनजाति की परिभाषा सर्वाधिक स्वीकार्य है जिसका रूपांतरण इस प्रकार है– ''जनजाति परिवारों या परिवारों के समूह का

ISSN (Online) 2582-9327

IJARSCMT

International Journal of Advanced Research in Science, Commerce, Management and Technology

Impact Factor: 5.781

Volume 3, Issue 8, August 2022

एक संकलन का एक संकलन होता है, जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक निश्चित भू–भाग पर रहते हैं, सामान्य भाषा बोलते हैं और विवाह, व्यवसाय या उद्योग के विषय में कुछ निषेधों का पालग करते हैं एवं एक निश्चित और उपयोगी परस्पर आदान–प्रदान की व्यवस्था का विकास करते हैं।''[9]

विभिन्न कारकों तथा बातों और बदलाव के उन भिन्न प्रक्रमों के कारण, जिनमें से विभिन्न आदिवासी समुदाय गुजरते रहे हैं, आज की भारतीय जनजाति **डॉ. मजूमदार** की परिभाषा में सम्मिलित सभी अपेक्षाओं अथवा लक्षणों पर पूरी तरह नहीं उतर सकती है। लेकिन यह कहा जा सकता है कि यदि काई समुदाय इन लक्षणों में से अधिकांश को पूरा करता है तो उसे एक जनजाति माना जा सकता है।

टी.बी. नायक 1960 ने भी जनजातीय जीवन की कसौटिया तथा सूचकांकों की बात विशिष्ट रूप से भारतीय संदर्भ में इस समस्या को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है नायक द्वारा दी गई कसौटियां निम्नलिखित हैं–

किसी जनजाति को 'जनजाति' होने के लिए समुदाय के भीतर न्यूनतम प्रकार्यत्मक परस्पर निर्भरता होनी चाहिए। इससे आर्थिक स्थिति के पिछड़ा होना चाहिए जिसका अर्थ है कि –उसके सदस्यों द्वारा मुद्रा व सिक्कों वाले अर्थशास्त्र का सम्पूर्ण महत्व समझ में नहीं आना चाहिए। प्राकृतिक साधनों के सम उपयोजन के लिए आदिम साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। जनजाति की अर्थव्यवस्था अल्प विकसित चरण पर होनी चाहिए। अनेक प्रकार की आर्थिक क्रियाओं का अनुसरण करना चाहिए।

उनकी अन्य लोगों से तुलनात्मक भौगोलिक पृथक्ता होनी चाहिए। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से एक जनजाति के सदस्यों की एक छौटा मुहल्ला होना चाहिए जिसमें क्षेत्रीय विभिन्न पाई जा सकती है। एक जनजाति राजनैतिक दृष्टि से संगठित होती है और उसकी सामुदायिक पंचायत एक प्रभावशील संख्या है। जनजाति के सदस्यों में परिवर्तन की न्यूनतम अभिलाषा होनी चाहिए। उनमें एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक रूढ़िवादिता होना चाहिए जो उन्हें उनकी प्राचीन प्रथाओं से बंधा रहे। एक जनजाति में परम्परागत नियम होते हैं तथा उसके उल्लंघन करने वाले सदस्यों के खिलाप विधिवत न्यायालय में कार्यवाही की जामी है।

नायक ने अपने दृष्टिकोण की और अधिक व्याख्या करते हैं किसी भी समुदाय को जनजाति होने के लिए इन सभी उपर्युक्त गुणों का होना आवश्यक है। नायक ने आगे कहा है कि जनजाति संस्कृतिकरण हो जाने पर जनजाति का दर्जा खो देती है मोनी नाग ने भारत के समकालीन सामाजिक राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में जनजाति की अवधारणा को समझाने का प्रयास किया है। उक्त उन्होंने अमेरिकन एथलोलॉजिकल सोसाइटी की वार्षिक बैठक सन् 1967 में प्रस्तुत किया था।

मानव शास्त्रीय तथा अन्य सामाजिक विज्ञान साहित्य में पाए जाने वाले जनजाति की विभिन्न परिभाषाएं एक इसमें से भिन्न हे। फ्रायड 1966 : 528–531 ने उदाहरण के तौर पर हॉबेल 1958 : 661 द्वारा बतायी गई निम्न परिभाषा को लिया है–एक सामाजिक समूह जो एक विशिष्ट प्रभेदकारी भाषा या बोली बोलती

है तथा जिसके पास एक विशिष्ट संस्कृति होती है जो उन्हें दूसरी जनजातियों से अलग करती है। यह अनिवार्य रूप से राजनीतिक रूप से संगठित नहीं होती।

हॉबेल ने यह लिखा है कि जनजाति को समूह मानने पर कौन–सी कठिनाईयों आती हैं, जब यह बताया जाता है कि उनके पास एक विशिष्ट संस्कृति और एक विशिष्ट भाषा या बोली होती है तथा जो अनिवार्यतः राजनीतिक रूप से संगठित नहीं हो तो हॉबेल ने स्थिति के अनुसार बदलने वाली कसौटियों और अवधारणाओं के प्रयोग की प्रवृत्ति को भी दिखाया हें जो तुलनात्मक उद्देश्य की दृष्टि से अनुपयुक्त होती है। नरॉल 1966 ने विकट स्थिति का समाधान करते हुए सम्प्रदाय इकाई वे चार प्रकार बताते हुए कसौटियों के दो समूहों का उल्लेख किया है, लेकिन इसे अन्य मानवशास्त्रियों द्वारा अधिक समर्थन नहीं मिला जो कि उनके द्वारा लिखे लेख पर ही गई टिप्पणी से परिलक्षित होता है।

मध्य 20वीं सदी के दरम्यान देश में ग्रामीण अध्ययनों का सूत्रपात हुआ इसी श्रृंखला में फ्रेड्रीक बेली का प्रकाशन 1960, 1961 अत्यधिक चर्चित रहा। उड़ीसा के कोंडमाल क्षेत्रवासी एक जनजाति और उड़ीसा हिन्दू जातियों के आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं के आधार पर बेली ने यह निष्कर्ष निकाला है कि हमें जाति और जनजाति को एक ही पंक्ति के दो विपरीत छोरों की तरह देखना चाहिए न कि पंक्ति में भिन्न अस्तित्वों की तरह किसी विशिष्ट कसौटिसों को आधार पर निर्दिष्ट समूहों का पंक्ति विभिन्न बिन्दुओं पर प्रतिस्थापन किया जा सकता है। उनकी बताई गई कसौटी हैं कृषि कार्य के लिए जमीन तथा जमीन से जुड़े लोगों का अनुपात यह अनुपात जितना ज्यादा होगा, उतना ही वह समूह जनजातीय छोर के करीब होगा। इसके विपरीत वे लोग जिनका भूमि पर अधिकार एक निर्मशील संबंध द्वारा प्राप्त हैं (जैसे काश्तकारी बटाईदारी आदि) इनका अनुपात जितना ज्यादा होगा उतना ही ज्यादा वह समूह, जाति छोर के करीब होगा।

फ्रायड (1966 : 531, 537) ने मार्गन (1878 : 103), फ्रायडरिच (1963 : 543) तथा सर्विस (1962 : 111, 115) के तर्कों के विरोध में यह कहां कि जनजाति राजनैतिक उदविकास में या सरकार की अवधारणा मं एक तर्कसंगत चरण है। उन्होंने यह कहा कि जनजाति चरण को राजनैतिक संगठन के एक राजतंत्र तक परागमन में उपस्थिति रहने की कोई आवश्यकता नहीं है यह भी उन्होंने प्राक्कल्पना दी है कि अधिकांश जनजातियों अपने ईर्द–गिर्द एक जटिल राजनैतिक ढांचे की प्रतिक्रिया में न कि उसके उदविकास में एक आवश्यक प्रारम्भिक चरण के रूप में विकसित हुई है।

आदिवासी साहित्य की विशेषता :

विद्वानों ने आदिवासी समाज की परिभाषाओं के आधार पर निम्नलिखित विशेषताएं बताई हैं–एक जनजाति की अनेक परिवारों या परिवारों के समूह का एक संकलन होता है प्रत्येक जनजाति की अपनी एक सामान्य भाषा होती है। जिससे विचारों का आदान–प्रदान और पारस्परिक एकता व सामाजिक संगठन का विकास सरलता से हो सके। जनजाति मुख्यतः निरक्षर होते हैं तथा इनमें लिखित भाषा का अभाव होता

है।इनका एक सामान्य नाम होता है। यह एक निश्चित भू–भाग पर रहती है। सामान्य भू–भाग के आधार पर सामुदायिक भावना भी दृढ़ हो जाती है। एक जनजाति प्रायः अन्तर्विवाही समूह होता है। एक जनजाति के सदस्यों में पारस्परिक आदान–प्रदान के कुछ सामान्य नियम और निषेध होते हैं। जिसे प्रत्येक सदस्य को मानना पड़ता है। तथा इसी आधार पर इनके व्यवहार नियंत्रित होते हैं। एक जनजाति की एक सामान्य संस्कृति होती है और बाहर के समूहों के विरुद्ध इसके सदस्यों में एकता की भावना होती है। प्रत्येक जनजाति का एक राजनैतिक संगठन होता है। अर्थव्यवस्था मुख्यतः उसके विशिष्ट पर्यावरण पर निर्भर होता है तथा अमुद्रा धारित या अर्धमुद्रा धारित व्यवस्था होती है।

इन अर्थों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक जनजाति की परम्पराएं रीति–रिवाज, कला, धार्मिक, विश्वास, लोक संस्कृति, अनुष्ठान, मूल्य आदि विशिष्ट होते हैं। किन्तु जैसा कि एक जनजाति समय और स्थान के संदर्भ से परिभाषित है, अतः आधुनिक सभ्य समुदायों के साथ लगातार अन्तर्संबंध के बाद जनजाति अपनी पहचान बनाए नहीं रख सकती।

विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण :

भारत देश में फैले हुए समस्त जनजातियों को स्वभावतः ही किसी एक वर्ग के अंतर्गत नहीं लाया जा सकता है। भारतीय आदिवासियों का वर्गीकरण मुख्यतः निम्न आधारों पर किया जाता है–1. प्रजातीय तत्वों के आधार पर, 2. भाषा के आधार पर, 3. भौगोलिक संरचना के आधार पर, 4. संस्कृति आधार पर, 5. आर्थिक आधार पर, 6. राज्य के आधार पर।

इस प्रकार से आदिवासी समाज का विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण करते समय हां सिर्फ मध्य भारत व मध्यप्रदेश की आदिवासियों जिसके अंतर्गत आती है उन्हीं की स्थिति को शामिल किया गया है।

1. प्रजातीय तत्वों के आधार पर :

सर हरबर्ट होप रिजले 1915, ज्युफ्रिडा और रेगरी 1934 हेड्डन 1924, गुहा 1939 ने अपने–अपने ढंग से प्रयास किया है। गुहा (1939 : "The abarigimal Races of India" and cuftune vol. 4 : N 12) जिनका प्रजातीय वर्गीकरण मानव प्रति से संबंधित मापो (जो 1931 में जनगणना करते समय ली गई थी) पर आधारित था, के कथानुसार मध्य भारत की आदिवासियों में ''प्रोतो–आस्ट्रेलायद'' प्रजाति की विशेषता है। इसमें करांवु, मुण्डा, भील, कोल आदि जनजातियां आती हैं। गुहा के मतानुसार यह भारत की दूसरी प्राचीनतम सजातीय समूह विभेद है। इन विभिन्न जन समूहों के शारीरिक लक्षणों के अंतर्गत, इनका कद ठिगना, केश लहरियेदार से घुघराले, त्वचा का रंग गहरे कत्थई से बहुत कुछ काला रहता है।

2. भाषा के आधार पर :

आदिवासी समाज का भाषा का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में संस्कृतियों को संचारित करने का एक शक्तिशाली साधन है। मध्यप्रदेश में द्राविण परिवार की बोली में गोंडी प्रमुख है जो कि मध्य भारत की भाषा हे। द्राविड़ परिवार की अन्य बोलियों में कुटुम्ब, माल्टो, कोलामी कुई है जो कि आदिवासियों द्वारा बोली जाती है।

आस्ट्रिक भाषा में मध्य तथा पूर्वी भारत की कोल या मुण्डा भाषाएं और बोलियाँ आती है। भाषा की दृष्टि से आस्ट्रिक परिवार की सबसे प्रधान भाषा मुण्डारी है। यह मध्यप्रदेश में भी पायी जाती है। इस भाषा के अंतर्गत मुण्डा, संथाल हो खरिया, कोरकू आदि आदिवासियां आती हैं।

3. भौगोलिक संरचना के आधार पर :

आदिवासी समाज की 1991 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की संख्या 6.77 करोड़ हैं जो भारत की पूरी आबादी (84.63 करोड़) का 8.08 प्रतिशत है। मध्य क्षेत्र में सर्वाधिक आदिवासीय जनसंख्या निवास करती है। विस्तार की दृष्टि से भी यह प्रदेश सबसे बड़ा हे। जो मध्यप्रदेश के गोंड़, बैगा, कोल, कोरकू, कमार, मुनिया आदि इस क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। गोंड़ आदिवासी मध्य क्षेत्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण आदिवासियों में से है।

4. संस्कृति आधार पर :

विभिन्न भारतीय आदिवासियों को विकास के एक स्तर पर रखना कठिन है। कुछ आदिवासियों सभ्य जातियों को अधिक निगत सम्पर्क में आ गई हैं तथा कुछ आज भी पर्याप्त दूरी पर है। प्रथम वर्ग में वे आदिवासियाँ आती हैं जो कि सच्चे अर्थों में आदिवासियों जाने योग्य हैं। ये विकास के प्राचीनतम स्तर पर है। ये दुर्गम स्थलों पर निवास करती है। जो स्थान सभ्य लोगों के स्थानों से काफी दूरी पर है।

आदिवासियों का दूसरा वर्ग वह है जिसके आदिम जीवन में कुछ परिवर्तन शुरू हो गए हैं फिर भी वे अपनी प्राचीन परम्पराओं को मानने वाले हैं। इनका जीवन सामूहिक न रहकर व्यक्तिवादी ही रहा है। इस वर्ग के अंतर्गत भारिया, बैगा आदि आते हैं।

5. आर्थिक आधार पर :

आदिवासी समाज की अर्थव्यवस्था अपने आप में एक विशिष्टता लिए हुए हैं। वे अर्थव्यवस्था की विभिन्न अवस्थाओं जैसे– भोजन संग्रह करने की अवस्था से लेकर स्थानान्तरण कृषि तथा स्थायी कृषि अवस्था तक में रहती है। मजूमदार और मदान[10] ने भारतीय आदिवासियों को आर्थिक आधार पर चार श्रेणियों में बांटा गया है–प्रथम समूह वे लोग जो जंगल की उपज पर निर्भर है। वस्तुतः ये समूह खाद्य संग्राहक हैं इनमें

मध्यप्रदेश की बिरहोर आदिवासी जाति आती है। दूसरी श्रेणी उन आदिवासियों की है जो खाद्य संग्राहक तथा कृषि व्यवस्था के बीच में है। इस समूह के लोग आंशिक रूप से खाद्य संग्रह पर निर्भर है और आंशिक रूप से कृषि पर। ऐसे समूहों में कमार, बैगा आदि आते हैं। तीसरा समूह वह है जो पूर्णतया कृषि पर निर्भर है। इसमें कृषि के दो प्रकार प्रचलित है, स्थानान्तरण कृषि और स्थायी कृषि। स्थानान्तरण कृषि करने वाले आदिवासियों में मध्यप्रदेश की भारिया, कोरवा आदि हैं। स्थानीय कृषि करने वाले समूहों में मध्यप्रदेश की गोड़ उरांव, मुण्डा आदि आदिवासी है। इस श्रेण में वे आदिवासी समूह है। जिन्होंने जीविकोपार्जन के लिए औद्योगिक जीवन को अपनाया है। इनमें मध्यप्रदेश के मुण्डा आदिवासी भी शामिल हैं।

निष्कर्षतः

यह कहा जा सकता है कि आदिवासियों के जीवन के विभिन्न आयामों से गुजरते हुए आज के जनुसूचित जनजाति के रूप में विद्यमान हैं। जिसमें उनका गहन शोध, अध्ययन, चिंतन के साथ आदिवासी विमर्श की दृष्टि से गहन शोध, अध्ययन चिंतन के साथ निबंधात्मक शिल्प का परिचय मिलता है। प्रस्तुत शोध पत्र में आदिवासी दर्शन, मिथक, ज्ञान परंपरा, आदिम सौंदर्य बोध, स्त्री की दशा, मीडिया व फिल्मों का दृष्टिकोण, वैश्वीकरण, विकास, राजनैतिक नेतृत्व और कतिपय आदिम प्रजातियों के विलुप्तीकरण तक आधिकारिक सामग्री प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ स्रोत :

[1]. प्रीत सागर जन समूह और जनजातियां अंतर्गत रोजगार समाचार नई दिल्ली 1993, पृ. 01

[2]. धुरिये जी.एस. एबारिजनल, सो काल्ड एण्ड देयर फ्युचर बानबे पोपुलर प्रकाशन 1943 धुरिये ने इस शीर्षक से पुस्तक को 1943 में लिखा था बाद में संस्करण में इनका शीर्षक अनुसूचित जनजातियां रखा।

[3]. दोषी, शम्भूलाल, उच्च सामाजिक मानव विज्ञान दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड 1978, पृ. 218–219

[4]. उप्रेती हरिश्चंद भारतीय जनजातियां जयपुर, सामाजिक विज्ञान हिन्दी रचना केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, 1970 पृ. 01

[5]. रायवर्मन, बी.के. एवं एच.एल. हरि ए प्रीलिमिनरी एप्रेजल ऑफ दि शेड्यूल्ड ट्राइब्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, ऑफिस ऑफ दि रजिस्टार जेनरल, इण्डिया, 1971 पृ. 02

[6]. ओनियन्स सी.टी. दि शर्टर आक्सकोर्द इंग्लिश डिक्शनरी वाल्यूम–2 लंदन, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस 1970, पृ. 243

[7]. मदन एस एन सोशल ऐन्थ्रो पोलोजी नई दिल्ली, अनमोल पब्लिकेशन 1989, पृ. 316

ISSN (Online) 2582-9327

IJARSCMT

International Journal of Advanced Research in Science, Commerce, Management and Technology

Impact Factor: 5.781

Volume 3, Issue 8, August 2022

[8]. लेविस आई.एम.सोशल ऐन्थ्रोलॉजिकल इन पर्सपेक्तिव ग्रेट बिटेन यूनिवर्सिटी प्रेस केम्ब्रिज,पृ.13

[9]. तिवारी, शिवकुमार मध्यप्रदेश के आदिवासी भोपाल, मध्यप्रदेश, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृ. 02

[10]. प्रीति सागर जनसमूह और जनजातियां अंतर्गत रोजगार समाचार खण्ड–17, अंक पृष्ठ 51, 20, 26 मार्च हिन्दी साप्ताहिक देवेन्द्र भारद्वाज मुख्य संपादन नई दिल्ली, ईस्ट ब्लाक लेवल 7–आर के पुरम 1993, पृ. 02